The Chitransh Academic & Research
An International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume1 | Issue 2 | March 2025
ISSN: 3049-303X (Online)
Website: www.thechitranshacadmic.in

राजकोषीय विरोध, कारीगर राजनीति और विजयनगर के तमिल क्षेत्र में वार्ता-आधारित साम्राज्यिक एकीकरण, लगभग 1400–1550

डॉ. राजकुमार राजौरिया

इतिहास विभाग, डी. ए-वी.कॉलेज, कानपुर

लेख विवरण

शोधपत्र

प्राप्ति तिथि: 20/04/2025
स्वीकृति तिथि: 21/04/2025
प्रकाशनतिथि: 30/04/2025

मुख्य शब्द: विजयनगर साम्राज्य; तमिल क्षेत्र; कराधान; कृषि-आधारित विरोध; कारीगर; नायक; अभिलेख; राज्य-निर्माण; वलंगै; इडंगै

सारांश

पंद्रहवीं शताब्दी के तमिल दक्षिण भारत में कराधान के विरुद्ध हुए सामूहिक विरोध कृषकों, कारीगरों, व्यापारियों और स्थानीय समुदायों के दृष्टिकोण से विजयनगर राज्य-निर्माण का अध्ययन करने का एक असाधारण अवसर प्रदान करते हैं। अभिलेखों का सबसे प्रसिद्ध समूह 1429 ई. का है, जब अनेक स्थानों पर वलंगै और इडंगै समूहों ने उन राजकोषीय माँगों को चुनौती दी जिन्हें वे दमनकारी अथवा अनधिकृत मानते थे। पूर्ववर्ती व्याख्याओं में इन विरोधों को मुख्यतः अधिशेष के बढ़ते निष्कर्षण की अभिव्यक्ति तथा विजयनगर के राजनीतिक केंद्र और उसकी तमिल परिधि के बीच संघर्ष के प्रमाण के रूप में देखा गया है। यह लेख क्षेत्रीय राज्य-निर्माण, शिल्प उत्पादन, व्यावसायिक गतिशीलता और नायक राजनीतिक सत्ता पर हुए बाद के शोधों के संदर्भ में इन अभिलेखों की पुनः समीक्षा करता है। इसका तर्क है कि इन विरोधों को विकसित होती साम्राज्यिक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के भीतर वैध आर्थिक निष्कर्षण की सीमाओं पर बातचीत करने के प्रयासों के रूप में अधिक उपयुक्त ढंग से समझा जा सकता है। प्रदर्शनकारियों ने कराधान या राजसत्ता को अपने-आप में अस्वीकार नहीं किया; बल्कि उन्होंने प्रथागत और स्वीकार्य देयों को उन माँगों से अलग माना जिन्हें अत्यधिक या अवैध बताया गया था। यह लेख आगे तर्क देता है कि पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य के बाद इसी प्रकार के विद्रोह-संबंधी अभिलेखों की घटती दृश्यता को प्रतिरोध के लुप्त हो जाने का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं माना जाना चाहिए। राजनीतिक मध्यस्थता में परिवर्तन, कारीगरों के बीच सामाजिक विभेदीकरण, नायकों की क्षेत्रीय सत्ता, प्रवासन और अभिलेखीय प्रथाओं में बदलाव—इन सभी ने इस बात को प्रभावित किया कि संघर्ष ऐतिहासिक अभिलेखों में किस प्रकार दिखाई दिया।

इस प्रकार तमिल क्षेत्र से प्राप्त साक्ष्य विजयनगर के एकीकरण को एक विवादित और वार्ता-आधारित प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिसमें साम्राज्यिक संस्थाओं, स्थानीय अभिजनों, व्यावसायिक समुदायों और कृषि उत्पादकों के पास असमान, किंतु परस्पर अंतःक्रियाशील प्रकार की राजनीतिक सक्रियता थी।

प्रस्तावना

विजयनगर साम्राज्य के इतिहासलेखन में लंबे समय तक राजवंश, युद्ध, सैन्य विस्तार, राजधानी हम्पी, मंदिर स्थापत्य और प्रशासनिक संस्थाओं को केंद्रीय स्थान प्राप्त रहा। किंतु राज्य-निर्माण की प्रक्रिया को केवल राजधानी अथवा शासक वर्ग के दृष्टिकोण से समझना उस सामाजिक संसार को अस्पष्ट कर देता है जिसके श्रम, उत्पादन और कर-अधिशेष पर साम्राज्यिक व्यवस्था निर्भर थी। तमिल क्षेत्र से प्राप्त पंद्रहवीं शताब्दी के अभिलेख इस सीमा को आंशिक रूप से दूर करते हैं, क्योंकि कुछ असाधारण प्रसंगों में इनमें कृषकों, बुनकरों, धातु-कारीगरों, व्यापारियों, चरवाहों और अन्य उत्पादक समुदायों की सामूहिक राजनीतिक भाषा प्रत्यक्ष रूप से सामने आती है।

विजयनगर सत्ता ने चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तमिल क्षेत्र पर अपना प्रभाव स्थापित किया। इससे पूर्व यहाँ चोलोत्तर राजनीतिक पुनर्संरचना, पांड्य, होयसळ तथा अनेक क्षेत्रीय शक्तियों की प्रतिस्पर्धा और स्थानीय सभाओं, मंदिर संस्थाओं तथा भू-अधिकारियों की दीर्घ परंपराएँ विद्यमान थीं। नई साम्राज्यिक सत्ता इन संस्थाओं को शून्य से निर्मित नहीं कर रही थी; उसे पहले से विद्यमान अधिकारों, राजस्व-दावों और स्थानीय सामाजिक पदानुक्रमों के साथ व्यवहार करना पड़ा। रवि अरविंद पालत ने इसी संदर्भ में तर्क दिया था कि विजयनगर अधिकारियों की नई परत ने तमिल देश में पहले से मौजूद अधिशेष-अधिग्रहण संबंधों पर अतिरिक्त राजकोषीय दबाव डाला, और 1429 ई. की घटनाएँ इसी तनाव की सबसे स्पष्ट अभिव्यक्तियों में थीं।

प्रस्तुत अध्ययन इस व्याख्या को अस्वीकार नहीं करता, किंतु उसे आगे बढ़ाता है। इसके अनुसार प्रश्न केवल यह नहीं है कि कर कितना अधिक था, बल्कि यह भी है कि किसे कर निर्धारित करने का अधिकार था, कौन-सी माँग वैध मानी जाती थी, किस स्तर पर राजकीय आदेश को स्थानीय सहमति की आवश्यकता पड़ती थी, और उत्पादक समुदाय अपनी श्रम-गतिशीलता तथा सामूहिक संगठन को किस प्रकार राजनीतिक संसाधन में बदलते थे। दूसरे शब्दों में, राजकोषीय विरोध राज्य की अनुपस्थिति का प्रमाण नहीं था; वह राज्य की वास्तविक उपस्थिति और उसकी सीमाओं—दोनों का सूचक था।

इसीलिए यहाँ **"वार्ता-आधारित साम्राज्यिक एकीकरण"** की अवधारणा प्रस्तावित की गई है। इसका आशय आधुनिक संवैधानिक वार्ता नहीं, बल्कि ऐसी ऐतिहासिक प्रक्रिया से है जिसमें साम्राज्यिक दावे स्थानीय समाज पर लागू तो होते थे, परंतु उनका वास्तविक स्वरूप समझौतों, प्रतिरोध, कर-रियायतों, संस्थागत मध्यस्थता, पलायन और पुनःसमझौते के माध्यम से निर्मित होता था।

इतिहासलेखन: खंडित राज्य से राजनीतिक अर्थव्यवस्था तक

विजयनगर राज्य की प्रकृति पर इतिहासलेखन में लंबे समय से मतभेद रहे हैं। बर्टन स्टीन ने दक्षिण भारतीय राजनीति को समझने के लिए "खंडित राज्य" की अवधारणा को प्रभावशाली रूप से विकसित किया। उनके मॉडल में राजसत्ता की अनुष्ठानिक सर्वोच्चता और स्थानीय सामाजिक-संसाधनिक स्वायत्तता साथ-साथ विद्यमान थीं। उनके ***Peasant State and Society in Medieval South India*** तथा बाद के ***Vijayanagara*** ने स्थानीयता, कृषक समाज, मंदिर और राजनीतिक केंद्र के संबंध पर गंभीर बहस को जन्म दिया।

नोबोरु कराशिमा के अभिलेख-आधारित अध्ययनों ने इस बहस को अधिक गतिशील रूप दिया। ***Towards a New Formation: South Indian Society Under Vijayanagar Rule*** में उन्होंने पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में तमिल क्षेत्र की प्रशासनिक तथा सामाजिक संरचना में महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों को रेखांकित किया। उनके अनुसार 1429 ई. के व्यापक विरोध से संबद्ध प्रत्यक्ष प्रशासकीय दबाव आगे चलकर नायक-आधारित अधिक विकेंद्रित संरचना की ओर परिवर्तित हुआ। बाद के शोध में उन्होंने तमिलनाडु में नायकों की स्थानांतरणीयता पर बल दिया, जिससे उन्हें केवल स्वतःस्फूर्त स्थानीय प्रभुओं के रूप में समझना कठिन हो जाता है। उनके 2002 के अभिलेखीय संकलन में तमिलनाडु के सैकड़ों विजयनगर अभिलेखों में उल्लिखित नायकों को व्यवस्थित किया गया, जिससे साम्राज्य और क्षेत्रीय मध्यस्थों के संबंधों का अधिक जटिल स्वरूप सामने आता है।

वलंगै और इडंगै की व्याख्या में भी सावधानी आवश्यक है। इन्हें स्थायी और अपरिवर्तनीय जातीय संघ मान लेना उचित नहीं है। वाई. सुब्बरायलु ने इनके मध्यकालीन इतिहास की समीक्षा करते हुए दिखाया कि समय के साथ इनकी संरचना और सामाजिक आधार बदलते रहे। विजयनगर काल तक उत्पादक,

शिल्पकार, व्यापारी और कृषि-संबद्ध समूह इनके अंतर्गत राजनीतिक रूप से एकत्र हो सकते थे। अतः "वलंगै बनाम इडंगै" को केवल परस्पर विरोधी जातीय खेमों के अर्थ में पढ़ना 1429 ई. की उस विशिष्ट परिस्थिति को समझने में बाधक होगा जिसमें दोनों ने संयुक्त कार्रवाई की।

कारीगरों के संदर्भ में विजया रामास्वामी और कार्ला सिनोपोली के अध्ययन विशेष महत्त्व रखते हैं। रामास्वामी ने विजयनगर समाज में शिल्पियों, विशेषकर बुनकरों के आर्थिक-सामाजिक स्थान, नकद कराधान, उत्पादन और व्यापार से उनके संबंध तथा गतिशीलता को रेखांकित किया। सिनोपोली ने अभिलेखीय और पुरातात्त्विक प्रमाणों को मिलाते हुए यह दिखाया कि शिल्प-उत्पादक केवल राजसत्ता के निष्क्रिय आश्रित नहीं थे; वे स्थानीय जाति-समुदायों तथा बहुजातीय क्षेत्रीय गठबंधनों के स्तर पर सक्रिय राजनीतिक कर्ता भी थे।

इस विस्तृत इतिहासलेखन से तीन निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथम, विजयनगर के तमिल क्षेत्र को केवल "केंद्र बनाम परिधि" के द्वंद्व में सीमित नहीं किया जा सकता। द्वितीय, कारीगरों को कृषकों से अलग एक निष्क्रिय शहरी श्रेणी मानना अनुपयुक्त है। तृतीय, राजकोषीय विवाद को राज्य के विघटन की तुलना में राज्य और स्थानीय समाज के बीच अधिकार-सीमाओं के पुनर्निर्धारण की प्रक्रिया के रूप में पढ़ना अधिक उत्पादक है।

स्रोत, पद्धति और अभिलेखीय समस्या

इस अध्ययन का प्राथमिक आधार ***Annual Report on South Indian Epigraphy*** तथा संबंधित दक्षिण भारतीय अभिलेखीय प्रतिवेदनों में दर्ज तमिल अभिलेख हैं। इनके अतिरिक्त कराशिमा, पालत, रामास्वामी, सुब्बरायलु और सिनोपोली द्वारा किए गए अभिलेख-पाठ तथा विश्लेषण का तुलनात्मक उपयोग किया गया है। 1429 ई. से संबंधित अभिलेख वृद्धाचलम्, कोरुक्कै, तिरुवैगावूर, पेन्नाडम और एलवनासूर सहित पेनार और कावेरी के बीच विस्तृत कई स्थानों से प्राप्त हुए हैं। पालत ने 1419 ई. के तिरुवारंगुलम् अभिलेख को इस प्रकार की सामूहिक कार्रवाई का पूर्ववर्ती उदाहरण माना है और 1447–48 ई. तक संबंधित राजकोषीय विवादों के प्रमाणों की ओर संकेत किया है।

यहाँ स्रोत-समालोचना अत्यंत आवश्यक है। मंदिर-दीवारों पर अंकित अभिलेख किसी आधुनिक प्रशासनिक अभिलेखागार के समान समाज के प्रत्येक संघर्ष को दर्ज नहीं करते। अधिकांश मध्यकालीन अभिलेख दान, कर-अधिकार, धार्मिक प्रतिष्ठानों, भूमि और विशेषाधिकारों के संदर्भ में निर्मित हुए। स्वयं पालत ने ध्यान दिलाया कि कृषकों और कारीगरों ने स्रोतों में अपेक्षाकृत कम प्रत्यक्ष निशान छोड़े हैं। दूसरी ओर, सिनोपोली बताती हैं कि विशेषतः बुनाई जैसे शिल्प का भौतिक पुरातात्त्विक चिह्न भी सीमित हो सकता है। इसलिए अभिलेखीय मौन को सामाजिक शांति के प्रत्यक्ष पर्याय के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता।

प्रमुख अभिलेखीय उदाहरण

समय	स्थान	अभिलेखीय संकेत	मुख्य विषय	ऐतिहासिक महत्त्व
1419 ई.	तिरुवारंगुलम्	पुडुकोट्टै अभिलेख, सं. 344/1914	सामूहिक राजकोषीय कार्रवाई	1429 से पूर्व विरोध की परंपरा
29 अप्रैल 1429	वृद्धाचलम्	ए.आर.ई., सं. 92/1918	वलंगै–इडंगै द्वारा अधिकारियों को सहयोग न देने का संकल्प	संगठित असहयोग
1429 ई.	कोरुक्कै	ए.आर.ई. 1917–18, सं. 216/1917	उपज के अनुरूप “न्यायोचित” कर की माँग	वैध और अवैध कर का भेद
जुलाई 1429	वृद्धाचलम् क्षेत्र	सं. 91/1918	अनेक उत्पादक एवं व्यापारी समूहों द्वारा कर-दरों पर सहमति	विरोध से समझौते की ओर संक्रमण
1429 ई.	तिरुवैगावूर	ए.आर.ई. 1914–15, सं. 59/1914	देयों और कर-दरों का सामूहिक निर्धारण	स्थानीय राजकोषीय अधिकार
1447 ई.	कुगैयूर	सं. 97/1918	भूमि-मापन की छड़ पर विवाद	मूल्यांकन की तकनीक स्वयं राजनीतिक प्रश्न

इन अभिलेखीय संख्याओं का प्रकाशन-वर्ष अभिलेख की रचना-तिथि नहीं है; वह पुरातात्त्विक/अभिलेखीय प्रतिवेदन की क्रम-संख्या और रिपोर्टिंग से संबंधित है।

राजकोषीय विस्तार और "न्यायोचित कर" का प्रश्न

विजयनगर की राजकोषीय व्यवस्था केवल भूमि-कर तक सीमित नहीं थी। कृषि-अधिशेष पर राज्य का दावा, विभिन्न पेशागत कर, शिल्प-उत्पादन पर शुल्क, करघा-कर, व्यापारिक चुंगी, बिक्री और परिवहन शुल्क, श्रम-संबंधी दायित्व तथा कुछ संदर्भों में सामाजिक-व्यावसायिक समुदायों पर सामूहिक देय—इन सभी ने उत्पादक समुदायों और प्रशासन के संपर्क को गहरा किया। पालत के संकलित प्रमाण बताते हैं कि कर-दायित्व व्यक्ति के साथ-साथ गाँव, राजस्व इकाई और व्यावसायिक समुदाय जैसे सामूहिक निकायों पर भी आरोपित हो सकते थे।

यही सामूहिकता विरोध का आधार भी बन सकती थी। यदि पूरा समुदाय किसी राजस्व-दायित्व के लिए उत्तरदायी बनाया जाता था, तो उसी संस्थागत ढाँचे का उपयोग कर-दर पर सामूहिक बातचीत के लिए किया जा सकता था। इस अर्थ में राजस्व प्रशासन ने केवल अनुशासन उत्पन्न नहीं किया; उसने अनजाने में सामूहिक राजनीतिक पहचान के लिए संरचनात्मक अवसर भी प्रदान किए।

1429 ई. के कोरुक्कै अभिलेख का महत्त्व इसी बिंदु पर है। इसमें विवाद का केंद्र "कर देना अथवा न देना" नहीं था। शिकायत यह थी कि माँग फसल की वास्तविक उपज के अनुरूप नहीं थी और अनुचित रूप से लगाई जा रही थी। सामूहिक निर्णय में स्वीकार्य देयों का भुगतान करने और अवैध माँगों को अस्वीकार करने की धारणा स्पष्ट है। पालत ने इसे ऐसी राजनीतिक मानसिकता से जोड़ा जिसमें परंपरा द्वारा स्वीकृत राजकीय हिस्से को वैध माना जा सकता था, जबकि उसके ऊपर की माँग को अन्यायपूर्ण समझा जाता था।

यह भेद इस शोधपत्र के केंद्रीय तर्क को पुष्ट करता है। आंदोलनकारियों की राजनीतिक भाषा राजसत्ता-विरोधी नहीं, बल्कि **राजसत्ता की वैध सीमा** निर्धारित करने वाली थी। राजकोषीय वैधता की कसौटी में उपज, पूर्व प्रथा, स्थानीय सहमति और स्थापित मापदंड सम्मिलित थे।

भूमि-मापन का प्रश्न भी इसी राजनीति का भाग था। कुगैयूर के 1447 ई. के अभिलेख में गीली और सूखी भूमि को अठारह फुट की मापन-छड़ से नापे जाने के कारण कठिनाई की शिकायत की गई और बाद में उसे दो फुट बढ़ाने का आदेश दिया गया। प्रथम दृष्टि में यह तकनीकी परिवर्तन दिखाई देता है; वास्तव में

भूमि-मापन की इकाई सीधे कर-आकलन को प्रभावित करती थी। अतः प्रतिरोध केवल कर की घोषित दर पर नहीं, उस प्रशासनिक तकनीक पर भी था जिसके माध्यम से कर-योग्य क्षेत्र और राजकीय देय निर्धारित किए जाते थे।

1429 ई.: विद्रोह, असहयोग अथवा राजकोषीय संवैधानिकता?

29 अप्रैल 1429 के वृद्धाचलम् अभिलेख में वलंगै और इडंगै समूहों के प्रतिनिधियों की सभा का उल्लेख मिलता है। वे राजकीय अधिकारियों, सेवा-अधिकारधारियों और स्थानीय शक्तिशाली तत्वों के कथित उत्पीड़न के विरुद्ध संगठित हुए। उनका एक उपाय यह था कि ऐसे अधिकारियों को आश्रय न दिया जाए, उनके लिए लेखे न लिखे जाएँ और उनकी योजनाओं में सहयोग न किया जाए। उल्लंघन करने वालों के विरुद्ध कठोर सामुदायिक दंड का उल्लेख आंदोलन की गंभीरता को दर्शाता है।

यह घटना हिंसक विद्रोह की तुलना में संगठित असहयोग की राजनीति को अधिक स्पष्ट करती है। मध्यकालीन राजस्व व्यवस्था लेखाकारों, स्थानीय सूचनादाताओं, कर-मध्यस्थों और सामाजिक सहयोग के बिना प्रभावी नहीं हो सकती थी। अतः "लेखा न लिखना" एक अत्यंत राजनीतिक कदम था। इसका अर्थ राजकीय सूचना-संग्रह और मूल्यांकन की स्थानीय अवसंरचना को निष्क्रिय करना था।

पलायन की धमकी भी इसी प्रकार महत्त्वपूर्ण थी। कोरुक्कै के प्रमाण में समुदायों के सामने क्षेत्र छोड़ने का विकल्प उपस्थित था। पालत ने मध्यकालीन दक्षिण भारत में पलायन को प्रतिरोध की एक महत्त्वपूर्ण पद्धति माना है। यदि कृषक या कारीगर दूसरे क्षेत्र में चले जाते, तो स्थानीय भू-अधिकारी, मंदिर और राज्य—तीनों राजस्व तथा श्रम से वंचित हो सकते थे। इसलिए गतिशीलता स्वयं सौदेबाजी की शक्ति बन सकती थी।

विजया रामास्वामी के बुनकर समुदायों पर अध्ययनों से इस बिंदु को और व्यापक संदर्भ मिलता है। मध्यकालीन दक्षिण भारत के बुनकर अपेक्षाकृत गतिशील थे और राज्य अथवा स्थानीय शासक उन्हें कर-रियायत, निवास-स्थल तथा अन्य प्रोत्साहन देकर आकर्षित कर सकते थे। बाद के दीर्घकालीन प्रमाण बताते हैं कि बुनकरों और धातु-कारीगरों का स्थानांतरण केवल आर्थिक विवशता नहीं, बल्कि अवसर और सौदेबाजी से भी जुड़ा था।

इसलिए 1429 की घटनाओं को "राजकोषीय संवैधानिकता" के एक पूर्व-आधुनिक रूप की तरह समझा जा सकता है—बशर्ते इस शब्द को आधुनिक संविधानवाद के अर्थ में न लिया जाए। समुदाय व्यवहार में यह दावा कर रहे थे कि राज्य की माँग असीमित नहीं हो सकती; स्थापित प्रथाएँ, उत्पादन की वास्तविकता और सामुदायिक मान्यता उस पर सीमा लगाती हैं।

वलंगै–इडंगै एकता और उत्पादक समुदायों की राजनीति

वलंगै और इडंगै का संयुक्त होना 1429 ई. के अभिलेखों की सबसे विशिष्ट विशेषताओं में से है। सामान्यतः दक्षिण भारतीय सामाजिक इतिहास में इन दोनों संरचनाओं के बीच संघर्षों पर अधिक ध्यान दिया गया है, किंतु राजकोषीय संकट के संदर्भ में उन्होंने व्यापक उत्पादक गठबंधन का रूप लिया।

सुब्बरायलु के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इनके ऐतिहासिक स्वरूप को कठोर जातीय श्रेणियों में स्थिर नहीं किया जा सकता। विजयनगर काल तक कारीगर समुदाय—जैसे कम्मालर तथा कैक्कोलर—इन व्यापक सामाजिक गठबंधनों से जुड़े हुए थे। 1429–30 के अभिलेखों में "98 वलंगै" और "98 इडंगै" जैसी संख्याएँ वास्तविक जातियों की यांत्रिक गणना के बजाय व्यापक सामुदायिक संघ की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी थीं।

जुलाई 1429 के एक अभिलेख में गठबंधन का सामाजिक विस्तार विशेष रूप से दिखाई देता है। उसमें भू-अधिकार से जुड़े प्रतिनिधियों के साथ नानादेशी तथा पदिनेण-विषयत्तर व्यापारी, कैक्कोलर बुनकर, मंदिर-संबद्ध संगीतकर्मी, चरवाहे, स्वर्णकार, तेल-व्यापारी और विभिन्न प्रकार के कृषक/किरायेदार समूह करों की अनाज और मुद्रा में देय दरों पर सहमति बनाते दिखाई देते हैं। यह साक्ष्य विरोध को संकीर्ण "किसान विद्रोह" की संज्ञा देने की सीमा को स्पष्ट करता है।

अधिक उपयुक्त शब्द **उत्पादक गठबंधन** होगा। इसमें कृषक और कारीगर के आर्थिक हित हमेशा समान नहीं थे; न व्यापारी और किरायेदार समान सामाजिक स्थिति रखते थे। फिर भी अत्यधिक राजकोषीय माँग के प्रश्न पर विभिन्न समुदाय अस्थायी राजनीतिक एकता बना सकते थे।

यही अस्थायीता महत्त्वपूर्ण है। वर्ग, जाति और व्यवसाय की पहचानें एक-दूसरे को समाप्त नहीं करती थीं। किसी व्यक्ति या समूह की राजनीतिक स्थिति स्थानीय संदर्भ में बदल सकती थी। इस कारण 1429 का गठबंधन स्थायी "वर्ग-संघ" नहीं था, बल्कि एक विशिष्ट राजकोषीय परिस्थिति में निर्मित बहु-सामुदायिक मोर्चा था। सिनोपोली का व्यक्तिगत कारीगर, स्थानीय जातीय समुदाय और बहुजातीय क्षेत्रीय संगठन—इन तीन स्तरों पर सामाजिक कार्रवाई का विश्लेषण ऐसे ही गतिशील संबंधों को समझने में उपयोगी है।

7. कारीगर राजनीति: उत्पादन, कर और सामाजिक शक्ति

विजयनगर की राजनीतिक अर्थव्यवस्था में कारीगरों की स्थिति विरोधाभासी थी। राज्य के लिए वे करदाता थे, किंतु साथ ही व्यापार और शहरी आय के विस्तार के स्रोत भी थे। मंदिरों को वस्त्र, धातु, आभूषण और अन्य सामग्री की आवश्यकता थी; शाही तथा सैन्य प्रतिष्ठान भी शिल्प-उत्पादन पर निर्भर थे। इसलिए कारीगरों पर कर बढ़ाना राजस्व के लिए आकर्षक था, किंतु अत्यधिक दबाव से उनका पलायन उत्पादन और कराधार दोनों को कमजोर कर सकता था।

विशेषतः बुनकरों की आर्थिक उपयोगिता ने उन्हें महत्वपूर्ण सौदेबाजी क्षमता प्रदान की। विजयनगर कालीन अभिलेखों में करघों पर कर, बुनकर समुदायों के सामूहिक कर, कर-रियायतें तथा बुनकरों से संबंधित राजस्व को मंदिरों को हस्तांतरित करने के उल्लेख मिलते हैं। रामास्वामी ने विजयनगर समाज में नकद करों की बढ़ती दृश्यता और शिल्पकारों से संबंधित अनेक करों की ओर संकेत किया है। सिनोपोली के अध्ययन में भी बुनकर कराधान, कर-रियायत और सामाजिक विरोध से संबंधित अभिलेख प्रमुख स्थान रखते हैं।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देता है। प्रारंभिक 1429 अभिलेखों में कारीगर कृषकों के साथ सामूहिक विरोध में उपस्थित हैं। बाद के दशकों में विभिन्न कारीगर समूह विशेष कर-रियायत, पेशागत अधिकार, मंदिर-संबद्ध विशेषाधिकार या बसावट की सुविधाओं के लिए अलग-अलग बातचीत करते दिखाई देते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि सामूहिक प्रतिरोध समाप्त हो गया; बल्कि उसकी सामाजिक संरचना बदल सकती थी।

राज्य भी इस विभेदीकरण से लाभ उठा सकता था। पालत ने प्रस्तावित किया कि कारीगरों—विशेषतः बुनकरों—को दिए गए प्रोत्साहन व्यापक कृषक-कारीगर गठबंधन को कमजोर करने में सहायक रहे होंगे। इस व्याख्या को पूर्णतः सिद्ध तथ्य की तरह स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है, किंतु यह एक महत्वपूर्ण संभावना अवश्य है। यदि कुशल और गतिशील शिल्पकारों को राज्य, नायक या मंदिर अलग-अलग आर्थिक सुविधाएँ उपलब्ध कराते थे, तो 1429 जैसी व्यापक एकता को बनाए रखना अधिक कठिन हो जाता।

इसी बिंदु पर "कारीगर राजनीति" केवल विरोध की राजनीति नहीं रह जाती। उसमें विशेषाधिकार प्राप्त करना, कर घटवाना, नई बस्तियों में स्थान पाना, मंदिर व्यवस्था में प्रवेश करना, बाजार से जुड़ना और आवश्यकता पड़ने पर स्थानांतरण करना—सभी शामिल हैं।

विरोध से समझौते तक: 1429 की घटनाओं का क्रम

यदि 1429 ई. के अभिलेखों को अलग-अलग घटनाओं के स्थान पर समयक्रम में पढ़ा जाए तो एक उल्लेखनीय प्रक्रिया सामने आती है। अप्रैल के अभिलेखों का स्वर अत्यंत प्रतिरोधात्मक है। राजकीय अधिकारियों के साथ असहयोग, लेखा न लिखना और समुदाय-भंजकों को कठोर दंड जैसे उपाय स्पष्ट टकराव का संकेत देते हैं।

कुछ ही महीनों बाद करों की निश्चित दरों पर सामूहिक समझौते के प्रमाण मिलते हैं। जुलाई 1429 का अभिलेख अनेक कृषि, व्यापारिक और शिल्प समूहों के प्रतिनिधियों द्वारा अनाज तथा नकद में देयों की दर तय किए जाने को दर्ज करता है। इसका अर्थ है कि विरोध का लक्ष्य प्रशासन को समाप्त करना नहीं, बल्कि राजकोषीय संबंधों को पुनर्निर्धारित करना था। अन्य क्षेत्रों में आंदोलन के प्रसार के साथ स्थानीय परिस्थितियों ने गठबंधनों का स्वरूप बदल दिया। एलवनासूर के संबंध में सिनोपोली के पुनर्पाठ में कुछ ब्राह्मण भू-अधिकारियों और मंदिर प्रबंधकों की भागीदारी भी दिखाई देती है, जो पुराने कर-मानकों की पुनर्स्थापना और नए करों के विरोध से जुड़े थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि "राज्य बनाम स्थानीय समाज" का सरल द्विभाजन पर्याप्त नहीं है। स्थानीय अभिजन कभी राजकोषीय दबाव के वाहक थे और कभी उसी दबाव के विरुद्ध उत्पादक समूहों के सहयोगी।

यह लचीलापन साम्राज्यिक एकीकरण का मूल था। विजयनगर का अधिकार स्थानीय समाज पर केवल सैन्य शक्ति से नहीं चलता था। कर वसूलने के लिए स्थानीय लेखाकार, भू-अधिकारधारी, मंदिर प्रतिष्ठान, व्यावसायिक समुदाय और उत्पादनकर्ता आवश्यक थे। इसलिए साम्राज्य का प्रभाव तभी स्थिर हो सकता था जब इनमें से पर्याप्त संख्या राजस्व व्यवस्था को स्वीकार करे।

नायक सत्ता और मध्यस्थता का परिवर्तन

पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और सोलहवीं शताब्दी में तमिल प्रदेश की राजनीतिक संरचना में नायकों की भूमिका अधिक स्पष्ट होती गई। नायक सैन्य और प्रशासकीय अधिकार को राजस्व-अधिकार से जोड़ने वाले मध्यस्थ थे। किंतु इन्हें एक समान श्रेणी मानना भी उचित नहीं है। कुछ शक्तिशाली क्षेत्रीय प्रभु बने, जबकि अनेक अन्य साम्राज्यिक नियुक्ति और स्थानांतरण से जुड़े रहे।

कराशिमा का नायक संबंधी अध्ययन इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने तमिलनाडु में कार्यरत नायकों की स्थानांतरणीयता के प्रमाणों से यह तर्क विकसित किया कि उनके स्थानीय सामाजिक आधार के बावजूद साम्राज्यिक राजसत्ता का उनसे सक्रिय संस्थागत संबंध बना रहा। उनके व्यापक अभिलेखीय संकलन ने नायकों के नेटवर्क को बड़े पैमाने पर पुनर्निर्मित किया है।

इसके परिणामस्वरूप राजकोषीय संघर्ष की संरचना भी बदल सकती थी। 1429 में विरोध प्रत्यक्षतः राजकीय अधिकारियों, जीवित-अधिकारधारियों तथा स्थानीय भू-अभिजनों के विरुद्ध व्यापक सामुदायिक संकल्प के रूप में व्यक्त हुआ। सोलहवीं शताब्दी तक राजस्व-दावे अधिकाधिक नायक, स्थानीय प्रशासक, मंदिर संस्थाओं और विशिष्ट व्यावसायिक समुदायों के बीच बहुस्तरीय संबंधों से गुजर सकते थे।

यह परिवर्तन राज्य की "कमजोरी" का सरल प्रमाण नहीं है। इसके विपरीत, मध्यस्थों के माध्यम से शासन साम्राज्य के लिए क्षेत्रीय समाज में अधिक गहराई तक पहुँचने का तरीका हो सकता था। लेकिन ऐसा

एकीकरण प्रत्यक्ष नौकरशाही केंद्रीकरण से भिन्न था। यह अधिकारों के प्रत्यायोजन, सेवा-संबंधों और राजस्व-साझेदारी पर आधारित था।

बर्टन स्टीन के मॉडल में जहाँ ऐसी क्षेत्रीय सत्ता विजयनगर की खंडित राजनीतिक संरचना से जुड़ती है, वहीं कराशिमा का शोध साम्राज्यिक नियुक्ति और नायक स्थानांतरण को अधिक महत्व देता है। इन दोनों को पूर्णतः परस्पर विरोधी मानने के स्थान पर तमिल साक्ष्य यह सुझाते हैं कि स्थानीय शक्ति और साम्राज्यिक नियंत्रण एक-दूसरे के भीतर अंतर्निहित हो सकते थे।

इस अध्ययन का दूसरा प्रमुख तर्क अभिलेखीय मौन से संबंधित है। पालत ने उल्लेख किया कि तमिल क्षेत्र में लगभग 1450 ई. के बाद 1429 जैसी घटनाओं के प्रत्यक्ष उल्लेख बहुत कम हो जाते हैं। उन्होंने इसे विजयनगर द्वारा स्थानीय शक्ति-संबंधों के सफल पुनर्गठन और कारीगरों सहित विभिन्न समूहों को नए राजनीतिक ढाँचे में समाहित किए जाने से जोड़ा।

कराशिमा की व्याख्या भी इस दिशा में जाती है कि विजयनगर शासन के सुदृढ़ होने और नायक संरचना के विकास से खुली टकरावपूर्ण स्थितियों की प्रकृति बदल गई। लेकिन "अभिलेखों में विद्रोह नहीं" और "समाज में प्रतिरोध नहीं"—ये दोनों एक ही कथन नहीं हैं।

प्रथम, अभिलेख स्वयं चयनात्मक स्रोत हैं। 1429 की घटनाएँ शायद इसलिए असाधारण रूप से स्पष्ट हैं क्योंकि उनके परिणामस्वरूप सामूहिक समझौते, कर-दरें अथवा मंदिर-दीवारों पर दर्ज किए जाने योग्य सार्वजनिक घोषणाएँ निर्मित हुईं। छोटी मोलभाव प्रक्रियाएँ, व्यक्तिगत कर-चोरी, भुगतान में विलंब या मौखिक समझौते पत्थर पर अंकित होने की संभावना कम रखते थे।

द्वितीय, प्रतिरोध का रूप बदल सकता था। पलायन, नई बस्तियों की ओर गमन, कर-रियायत के लिए सामुदायिक याचिका अथवा किसी प्रतिद्वंद्वी नायक/मंदिर की शरण लेना खुली बगावत की तुलना में कम दृश्य किंतु प्रभावी रणनीति हो सकती थी। बुनकरों के दीर्घकालीन प्रवासन और उन्हें आकर्षित करने के लिए दी गई सुविधाएँ इस संभावना को गंभीरता से लेने का आधार प्रदान करती हैं।

तृतीय, कारीगर समुदायों का आंतरिक आर्थिक विभेदीकरण भी महत्त्वपूर्ण था। उत्पादन और बाजार के विस्तार से सभी शिल्पकारों को समान लाभ नहीं हुआ। कुछ बुनकर या व्यापारी मध्यस्थ अधिक संसाधन-संपन्न हो सकते थे, जबकि अन्य प्रत्यक्ष उत्पादक बने रहे। ऐसे विभेदीकरण के बाद "कृषक और कारीगर" को एक स्थायी राजनीतिक गठबंधन समझना कठिन है।

चतुर्थ, सत्ता की मध्यस्थ संरचना बदल गई। यदि राजस्व विवाद प्रत्यक्ष साम्राज्यिक अधिकारी और गाँव के बीच होने के बजाय नायक, मंदिर, पेशागत समुदाय और स्थानीय प्रशासक के बीच विभाजित हो गया, तो संघर्ष की भाषा भी बदलनी स्वाभाविक थी।

अतः 1450 के बाद का मौन स्वयं ऐतिहासिक व्याख्या की माँग करता है। उसे साम्राज्यिक "शांति" का निष्क्रिय प्रमाण बनाने के बजाय यह पूछना अधिक उपयोगी है कि **कौन-से संघर्ष दर्ज किए जाने योग्य बने और कौन-से नहीं**।

मंदिर: धार्मिक स्थल से राजनीतिक सार्वजनिक क्षेत्र तक

1429 के अनेक निर्णय मंदिर परिसरों में किए और उत्कीर्ण किए गए। इसे केवल इसलिए नहीं समझा जाना चाहिए कि पत्थर की उपलब्ध दीवारें वहीं थीं। दक्षिण भारतीय समाज में मंदिर आर्थिक संपत्ति, रोजगार, भूमि-अधिकार, अनुष्ठानिक प्रतिष्ठा और स्थानीय सार्वजनिक जीवन का महत्त्वपूर्ण केंद्र था।

वृद्धाचलम् में समुदायों का मंदिर-प्रांगण में एकत्र होना राजकोषीय विवाद को धार्मिक वैधता और सार्वजनिक दृश्यता दोनों प्रदान करता था। पत्थर पर समझौता अंकित कराना स्थानीय स्मृति के स्थायित्व का माध्यम था। भविष्य के अधिकारी अथवा समुदाय पूर्व निर्धारित शर्तों का संदर्भ ले सकते थे।

मंदिर इस अर्थ में राज्य का सीधा पर्याय नहीं था। कभी वह राजकीय अनुदान का प्राप्तकर्ता था, कभी स्वयं कर या देय एकत्र करता था, कभी कारीगरों को प्रोत्साहन देता था और कभी स्थानीय विवाद की सार्वजनिक संस्था बनता था। सिनोपोली के अध्ययन में शिल्पियों और मंदिरों के संबंधों की यही विविधता दिखाई देती है—दान, कर-हस्तांतरण, वेतन, विशेषाधिकार, कर-रियायत और विवाद सभी इन संबंधों में

सम्मिलित थे। इसलिए मंदिर को केवल "राजकीय वैचारिकी" की संस्था मानना पर्याप्त नहीं है। 1429 के संदर्भ में वह उत्पादक समुदायों के राजनीतिक संकल्प के सार्वजनिक पंजीकरण का स्थान भी था।

साम्राज्यिक एकीकरण की पुनर्व्याख्या

तमिल क्षेत्र के साक्ष्य विजयनगर साम्राज्य के विस्तार को विजय के बाद स्वतः स्थापित प्रशासनिक नियंत्रण के रूप में प्रस्तुत नहीं करते। साम्राज्य को स्थानीय राजस्व-परंपराओं, मंदिर संस्थाओं, भू-अधिकारियों, कृषक समुदायों, शिल्पकारों और व्यापारियों से निरंतर व्यवहार करना पड़ा।

इस प्रक्रिया को तीन चरणों में समझा जा सकता है। आरंभिक चरण में नई राजकीय तथा सैन्य-प्रशासकीय परत स्थानीय अधिशेष पर अतिरिक्त दावा स्थापित करती दिखाई देती है। दूसरा चरण तीव्र सामूहिक प्रतिरोध और राजकोषीय सीमाओं पर खुली बातचीत का है, जिसकी चरम अभिव्यक्ति 1429 में मिलती है। तीसरे चरण में राजनीतिक मध्यस्थता अधिक बहुस्तरीय हो जाती है—नायक सत्ता, पेशागत विशेषाधिकार, मंदिर-आधारित राजस्व प्रबंधन, कर-रियायत और कारीगर गतिशीलता के माध्यम से।

यह क्रम कोई सरल रैखिक विकास नहीं था। विभिन्न क्षेत्रों में ये प्रक्रियाएँ अलग गति से चल सकती थीं। फिर भी इससे एक व्यापक निष्कर्ष निकलता है: विजयनगर की राजनीतिक शक्ति केवल अधिक कर निकालने की क्षमता पर निर्भर नहीं थी; वह यह निर्धारित करने की क्षमता पर भी निर्भर थी कि स्थानीय समाज किस स्तर के निष्कर्षण को स्वीकार करेगा।

राज्य-निर्माण इसलिए केवल "केंद्र की शक्ति" नहीं, बल्कि स्थानीय सहमति पैदा करने की क्षमता भी था। यह सहमति स्वैच्छिक अथवा समानतावादी नहीं थी। हिंसा, सामाजिक असमानता और दंड की संभावना सदैव मौजूद थी। फिर भी प्रशासन की व्यावहारिक सफलता के लिए स्थानीय सहयोग आवश्यक था।

निष्कर्ष

1429 ई. के तमिल अभिलेख विजयनगर साम्राज्य के सामाजिक इतिहास में एक दुर्लभ क्षण को संरक्षित करते हैं जब कृषक, कारीगर, व्यापारी और अन्य उत्पादक समुदाय अपनी राजनीतिक आवाज के साथ अभिलेखीय दृश्यता प्राप्त करते हैं। इन साक्ष्यों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह नहीं है कि इनमें लोगों ने "करों का विरोध" किया, बल्कि यह है कि उन्होंने **वैध और अवैध निष्कर्षण के बीच भेद** स्थापित किया।

आंदोलनकारियों ने राजकीय अधिकार को पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया। उन्होंने उचित देयों को स्वीकार किया, किंतु फसल की उपज, पूर्व प्रथा और सामुदायिक सहमति से बाहर की माँग को चुनौती दी। लेखाकारों को सहयोग न देना, अधिकारियों का सामाजिक बहिष्कार, सामूहिक पलायन की संभावना और निश्चित कर-दरों की स्थापना इस राजनीतिक दावे के विभिन्न रूप थे।

वलंगै और इडंगै का संयुक्त मोर्चा यह भी दिखाता है कि मध्यकालीन जातीय और व्यावसायिक पहचानें राजनीतिक कार्रवाई में कठोर और अपरिवर्तनीय नहीं थीं। साझा राजकोषीय दबाव उत्पादक समुदायों के बीच ऐसे गठबंधन उत्पन्न कर सकता था जो सामान्य परिस्थितियों में परस्पर प्रतिस्पर्धी थे।

कारीगर इस प्रक्रिया में गौण नहीं थे। विशेषतः बुनकरों और अन्य कुशल शिल्पियों की गतिशीलता, बाजार से संबंध और कराधार में महत्त्व ने उन्हें विशिष्ट सौदेबाजी शक्ति प्रदान की। राज्य और उसके मध्यस्थों द्वारा कर-रियायत, बसावट प्रोत्साहन और विशेषाधिकारों का उपयोग केवल आर्थिक नीति नहीं था; वह राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया का हिस्सा था।

इसी संदर्भ में लगभग 1450 के बाद 1429 जैसे व्यापक विरोधों की अभिलेखीय अनुपस्थिति को "प्रतिरोध के अंत" की तरह नहीं पढ़ा जाना चाहिए। नायक मध्यस्थता, स्थानीय समझौतों, पेशागत विभेदीकरण, श्रम-गतिशीलता और अभिलेखीय चयन ने संघर्ष की दृश्यता बदल दी।

अंततः, **तमिल क्षेत्र का अनुभव विजयनगर को न तो पूर्ण केंद्रीकृत नौकरशाही राज्य सिद्ध करता है और न** ही केवल ढीले-**ढाले स्थानीय खंडों का संघ। अधिक उपयुक्त रूप में यह एक ऐसा साम्राज्य था जिसकी** शक्ति निरंतर मध्यस्थता पर आधारित थी। साम्राज्यिक संप्रभुता और स्थानीय अधिकार के बीच सीमा स्थिर नहीं थी; वह राजस्व, श्रम, भूमि, मापन, उत्पादन और विशेषाधिकार से जुड़े असंख्य विवादों में बार-बार निर्मित होती थी।

इस दृष्टि से 1429 **का विरोध विजयनगर के एकीकरण की विफलता नहीं बल्कि उसी एकीकरण की** प्रक्रिया का हिस्सा था। राज्य और समाज के बीच संघर्ष ने उन सीमाओं को निर्धारित किया जिनके भीतर राजकीय निष्कर्षण व्यावहारिक और वैध बन सकता था। इसीलिए तमिल क्षेत्र में विजयनगर साम्राज्य का इतिहास विजय और अधीनता की तुलना में **विरोध, मध्यस्थता और वार्ता के माध्यम से निर्मित साम्राज्यिक सत्ता** का इतिहास अधिक प्रतीत होता है।

संदर्भ-सूची

प्राथमिक एवं अभिलेखीय स्रोत

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण। ***दक्षिण भारतीय अभिलेखों की वार्षिक रिपोर्ट*** (***Annual Report on South Indian Epigraphy***)। विभिन्न वर्ष, विशेषतः 1914–15, 1917–18, 1928–29, 1937–38 तथा 1954–55।

पुडुकोट्टै राज्य के अभिलेख (***Pudukkottai State Inscriptions***)। तिरुवारंगुलम् से संबंधित अभिलेख संख्या 344, सन् 1914।

द्वितीयक स्रोत

कराशिमा, नोबोरु। ***एक नवीन संरचना की ओर: विजयनगर शासन के अंतर्गत दक्षिण भारतीय समाज*** (***Towards a New Formation: South Indian Society Under Vijayanagar Rule***)। दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1992।

कराशिमा, नोबोरु। "मल्लप्पा नायक का परिवार: तमिलनाडु में विजयनगर नायकों की स्थानांतरणीयता" ("The Family of Mallappa Nayaka: Transferability of Vijayanagar Nayakas in Tamil Nadu")। ***इंडियन हिस्टोरिकल रिव्यू***, खंड 4, अंक 1, 2001।

कराशिमा, नोबोरु। ***नायकों की अनुक्रमणिका: दक्षिण भारत के विजयनगर अभिलेख*** (***A Concordance of Nayakas: The Vijayanagar Inscriptions in South India***)। दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2002।

पालत, रवि अरविंद। "मध्यकालीन दक्षिण भारत में जन-विरोध और राज्य: विजयनगर साम्राज्य (1360–1565) का एक अध्ययन" ("Popular Revolts and the State in Medieval South India: A Study of the Vijayanagara Empire, 1360–1565")। ***बिजड्रागेन टोट डे ताल-, लांड- एन वोल्केनकुंडे***, खंड 142, अंक 1, 1986, पृ. 128–144।

रामास्वामी, विजया। ***मध्यकालीन दक्षिण भारत में वस्त्र और बुनकर*** (***Textiles and Weavers in Medieval South India***)। दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1985।

रामास्वामी, विजया। "विजयनगर समाज में कारीगर" ("Artisans in Vijayanagar Society")। ***द इंडियन इकोनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू***, खंड 22, अंक 4, 1985, पृ. 417–444।

सिनोपोली, कार्ला एम.। "विजयनगर काल के दक्षिण भारतीय शिल्प-उत्पादकों में पहचान और सामाजिक क्रिया" ("Identity and Social Action among South Indian Craft Producers of the Vijayanagara Period")। ***आर्कियोलॉजिकल पेपर्स ऑफ द अमेरिकन एंथ्रोपोलॉजिकल एसोसिएशन***, खंड 8, अंक 1, 1998, पृ. 161–172।

सिनोपोली, कार्ला एम.। ***शिल्प उत्पादन की राजनीतिक अर्थव्यवस्था: दक्षिण भारत में साम्राज्य-निर्माण, लगभग 1350–1650*** (***The Political Economy of Craft Production: Crafting Empire in South India, c. 1350–1650***)। कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003।

स्टीन, बर्टन। ***मध्यकालीन दक्षिण भारत में कृषक राज्य और समाज*** (***Peasant State and Society in Medieval South India***)। दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1980।

स्टीन, बर्टन। ***विजयनगर*** (***Vijayanagara***)। द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया। कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989।

सुब्बरायलु, वाई.। "मध्यकालीन दक्षिण भारत के दाहिना-हाथ और बायाँ-हाथ विभाजन: एक आलोचनात्मक समीक्षा" ("The Right-Hand and Left-Hand Divisions of Medieval South India—A Critique")। ***प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस***, खंड 60, 1999, पृ. 1118–1125।